भोजपुरी एवं बांगला लोक जीवन म. धार्मिक लोकगीतों का स्वरूप

रंजना शर्मा
एसिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बेथुन कॉलेज, कोलकाता

सार : *भोजपुर तथा बंगाल की भौगोलिक सीमाएं परस्पर एक दूसरे के निकटवर्ती होने के साथ-साथ एक ही भाषा वर्ग की दो अलग भाषिक स्वरूपों म. विकसित हुई आगे चलकर दोनों भाषाएँ स्वतंत्र एवं समृद्ध साहित्यिक योगदान के कारण अपनी निजात को बनाए रखने म. सक्षम हुई हैं। दोनों प्रदेश खान-पान, रीति-रिवाज, भाषा, संस्कृति, आचार व्यवहार, धार्मिक विश्वास एवं लोकाचार की दृष्टि से परस्पर समानताओं के बावजूद एक दूसरे से भिन्न है। ऐतिहासिक सामाजिक विकासक्रम म. भोजपुरी तथा बांगला के भीतर जिन तत्वों को प्रमुखता मिली एवं जिसके आधार पर भोजपुरी एवं बांगला लोकसाहित्य अपना स्वरूप ग्रहण कर पाया उन्ह. खंगालने की आवश्यकता इसलिए भी है कि इन्हीं बिन्दुओं पर आकर दो अलग भाषिक स्वरूप न सिर्फ स्वतंत्रता और संप्रभुता को अर्जित करते हैं वरन अध्ययन और अनुसंधान की नयी दिशाय. भी खोल देते हैं। आज भाषा एवं संस्कृति की दृष्टि से यह समझना अत्यन्त आवश्यक हो उठा है की विभिन्न भारतीय भाषाओं एवं बोलियों म. किन बिन्दुओं म. मिलान की सर्वाधिक संभावनाय. छिपी हुई हैं और किन बिन्दुओं पर केन्द्रीकृत होकर लोकसाहित्य के भीतर निहित अखंड स्वरूप को न सिर्फ उद्‌भाषित किए जाने की आवश्यकता है वरन उन्ह. पहचानकर इस दिशा म. कदम उठाने की भी आज मांग है। अनेक देशों म. लोकसाहित्य को नये सिरे से पहचाने कि दिशा की ओर द्रुत कदम बढ़ाये गए हैं। उन्ह. अपने इतिहास एवं मानव सभ्यता के क्रमिक विकास को समझने ने न सिर्फ सहायता मिली वरन अनेक ऐसे क्षेत्र उद्घाटित हुए हैं जिनके आधार पर नयी इतिहास दृष्टि को भी विकसित किया है।*

बीज शब्दगुच्छ : धर्म, धार्मिक विश्वास, लोकायत, लोकजीवन, लोकगीत, परम्पराएँ, लोकाचार, कृषि देवता, कृषि उपकरण, स्त्री गीत।

भारतीय समाज व्यवस्था म. ,चाहे वह ग्रामीण समाज हो या शहरी, धर्म की सत्ता अनिवार्यतः प्रमुख है। धर्म को प्रमुखता का संबंध केवल धार्मिक संप्रदायों, स्थलों, पीठों, मठों या उनसे जुड़ी जाति, गोष्ठी या समूह से नहीं है वरन धर्म एवं इससे जुड़ी क्रिया-पद्धति भारतीय समाज व्यवस्था के आंतरिक संरचनाओं का भी स्वरूप निर्धारित करता है। “प्राचीन समय से ही भारतवर्ष म. धर्म संबंधी नाना मत एवं मतभेद रहा है। नाना मुनियों के नाना मत रहे हैं। प्रश्न, वितर्क, जिज्ञासा प्राचीन भारतीय दर्शन के प्राण केन्द्र थे।”[1] तथापि बौद्धों तथा जैनियों म. मतभेद था। शैव एवं वैष्णव धर्म म. विरोध था। परस्पर विरोध एवं मतभेद के आधार पर ही विभिन्न शाखाओं, संप्रदायों एवं मतभेदों के भीतर धर्म एवं धार्मिक मतवादों का विकास हुआ। “धर्म को संस्कृति का प्राण कहा गया है। ‘धृ’ धातु से बने धर्म का अर्थ है धारण करना, आलम्बन देना, पालन करना आदि। ‘धारयते इति धर्मः’ अर्थात् जिसका धारण हो विकास हो, रक्षा हो वही धर्म है। इसके अतिरिक्त जिसम. व्यक्ति का लौकिक कल्याण हो अभ्युदय हो और आध्यात्मिक चेतना जाग्रत हो वह भी धर्म है।”[2] धर्म बुद्धि से परे वह चेतना है जो ज्ञान द्वारा उद्‌बुद्ध होती है एवं स्वानुभूति पर आधारित होती है। भक्त कवि चतुर्भुज दास के शब्दों म. ‘धर्म वही जो भरम गभावै’ अर्थात धर्म या आध्यात्मिक चेतना से सांसारिक भ्रमों से मुक्ति मिलती है। श्रेणियों म. विभाजित समाज म. अगर धर्म तथा धार्मिक मतवादों एवं विश्वासों पर विचार करने पर यह साफ समझ म. आता है कि सभी वर्गों, समूहों, जातियों तथा वर्णों म. धर्म को धारण करने की न तो समान प्रवृत्ति रही है और न ही धर्म के शरणापन्न गए अनुयायियों का समान लक्ष्य ही रहा है।

इस आलेख म. भोजपुरी तथा बांगला लोकजीवन म. प्रचलित धार्मिक लोकगीतों म. धर्म के स्वरूप एवं प्रभाव को पहचानने का प्रयास किया गया है।

भोजपुरी एवं बांगला का आपसी संबंध अपने अस्तित्व काल से ही रहा है, दो अलग भौगोलिक क्षेत्रों की भाषा होने के बावजूद दोनों भाषा-भाषी समुदाय के भीतर अनेक समानताएँ हैं। भाषिक दृष्टि से भोजपुरी तथा बांगला का विकास मागधी से हुआ है। “डॉ सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार भोजपुरी पश्चिमी मागधी वर्ग, मैथिली तथा मगही मध्य मागधी वर्ग तथा बंगला, असमिया और उड़िया पूर्वी मागधी वर्ग के अन्तर्गत आती है। इस प्रकार बांगला, असमिया तथा उड़िया, यदि भोजपुरी की चचेरी बहन. हैं तो मैथिली और मगही इसकी सगी बहन.।”[3] जहाँ इन भाषाओं म. उत्पत्तिमूलक समानता है वहीं इनम. भौगोलिक भिन्नता एवं सांस्कृतिक, सामाजिक एवं परिवेशगत भिन्नता भी है। जिसे सामाजिक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य म. देखा जाना चाहिए। ऐतिहासिक विवरण के अनुसार भोजपुर अपनी वीरता, पराक्रम और सैन्य शक्तियों के लिए विख्यात रहा है। वहीं बंगाल का इतिहास भी नाना प्रकार के उथल-पुथल से भरा हुआ है। “बंग प्रदेश म. मुस्लिम राजत्व कायम करने के लिए पराक्रमी मुगलों को बहुत परिश्रम करना पड़ा था, यदुनाथ सरकार के अनुसार प्रतापादित्य एवं सीताराम जैसे दुर्धर्ष बंगालियों का अविर्भाव इसका प्रमाण है। देखा जाए तो बंगालियों ने किसी काल म. हिंसात्मक तांत्रिक पूजा-पद्धति का वर्जन नहीं किया है। भक्ति म. अश्रु, कम्प, स्वेद, वैवर्ण्य प्रभृति लक्षण वैष्णव बंगाली मात्र म. रहा है- यह कहा जाना नितांत ही असंभव है।”[4]

“बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के 1871 के जर्नल म. भोजपुर का उल्लेख करते हुए बलाचमैन लिखते हैं- बंगाल के पश्चिमी प्रान्त तथा दक्षिणी बिहार के राजा, दिल्ली के सम्राट के लिए अत्यन्त दुखमयी थे, अकबर के राजत्वकाल म. बक्सर के समीप भोजपुर के राजा दलपत,

सम्राट से पराजित होकर बन्दी किये गये और अंत म., जब बहुत दण्ड के पश्चात वे बन्धन-मुक्त हुए तो, उन्होंने पुनः सम्राट के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति की। जहाँगीर के राजत्वकाल म. भी उनकी, क्रान्ति चलती रही, जिसके परिणामस्वरूप भोजपुर लूटा गया तथा उनके उत्तराधिकारी प्रताप को शाहजहाँ ने फाँसी का दण्ड दिया।"[5]

बंग देश म. प्राचीन काल से ही वैष्णव धर्म का वर्चस्व रहा है। ब्राह्मणवाद के कट्टरता ने जब वैष्णव, शैव तथा शाक्त धर्म को अवैदिक घोषित कर उसे अस्वीकार किया तब भी वैष्णव धारा अविच्छिन्न रूप से 'लोक' म. प्रवाहित होती रही, वैष्णव धर्म के नाना स्वरूपों म. पौराणिकता, अवतारवाद, राधा-कृष्ण तथा विष्णु पूजा आदि के कारण भी यह सहजता से लोक द्वारा ग्रहणीय हो उठा। मल्लभूमि के राजा वीर हम्बीर की राजधानी विष्णुपुर को तो 'द्वितीय वृन्दावन' कहा गया है। "विष्णुपुर सन्निहित ग्राम, बाँध एवं जलाशयों के नामकरणों म. वैष्णव भावना एवं आवेग का प्रभाव देखा जाता है। जैसे गाँव का नाम- द्वारका, मथुरा, अयोध्या, अवन्ती आदि। इसी प्रकार जलाशयों का नाम- कृष्ण बाँध, यमुना बाँध, कालिन्दी बाँध प्रभृति।"[6]

मल्लभूमि प्रदेश म. गाये जाने वाले एक बांगला लोकगीत म. वैष्णव धर्म के प्रभाव से राजा अपने राजत्व के कारण उत्पन्न अहंकार के मिट जाने की याचना करता है-

प्रभु मोर श्रीनिवास
पूराइले मोनेर आस
तोया बिनू गति नाहि आर
आछिनू विषय किट
बड़ोई लागीतो मीठ
घूचाइलो राज अहंकार।

वैष्णव भक्तितत्व म. नैतिक सदाचार, चारित्रिक विशुद्धता, सन्यास तत्व की प्रधानता एवं सामान्य जन का सहज प्रवेश, जाति-पाति का विरोध आदि ऐसे कारक हैं जिसने वैष्णव धर्म को निरंतर विस्तार का सुअवसर प्रदान किया। बंगाल के सुविस्तृत अंचल म. वैष्णव धर्म के प्रसार का उत्स इन कारकों को भी माना जाना चाहिए जहाँ मानव मात्र के लिए धर्म का प्रवेश द्वारा खोल दिया गया हो वहाँ धर्म के कट्टर और संकीर्ण स्वरूप के स्थान पर विराट स्वरूप ही विकसित होते हैं।

बंगाल के राढ़ अंचल म. राजा वीर हम्बीर के शासन काल म. वैष्णव धर्म का प्रसार विष्णुपुर के पार्श्ववर्ती अंचलों म. तेजी से हुआ। राजा वीर हम्बीर के उपरांत विष्णुपुर के राजा गोपाल सिंह (सन 1730-1745) के शासन काल म. वैष्णव भक्ति को और अधिक बढ़ावा मिला। धर्मपरायण राजा गोपाल सिंह ने कानून बनाकर लोगों को हरि नाम जपने के लिए बाध्य किया था। रूपराम चक्रवर्ती द्वारा रचित गीत म. गोपाल सिंह के राजत्व काल म. प्रचलित वैष्णव धर्म की छवि इस रूप म. आँकी है-

राज्येर साथे राजा कोरे एकादशी।
पंचवर्ण द्विज आदि थाके उपवासी।।
चारा माना हाथी के घोड़ा के माना घास।
दशमीर बाद्यो बाजे राजार निवास।।

राजा गोपाल सिंह द्वारा वैष्णव धर्म की मान्यता और सामान्य जनता को उसे स्वीकार कर लेने के प्रति बाध्य किया जाना राजकीय आदेश को अगर थोड़ी देर के लिए नजरअंदाज कर. तो एक बात स्पष्ट हो जाता है कि बंगभूमि वैष्णव धर्म के भीतर निहित उदार चेतना को ही अपने मानस द्वारा सहजता से स्वीकार करने की दिशा की ओर अग्रसर हो रही थी। इसके अतिरिक्त ग्राम बंगाल की भूमि अपनी भौगोलिक संरचना में जातीय मनोवृत्ति, सामाजिक जीवन म. निरंतर उतार-चढ़ाव तथा धार्मिक एवं राजनीतिक संघातों को अपने जीवन म. अनवरत गहरी संवेदना और जटिल जीवन पद्धतियों के भीतर महसूस करने के कारण लोकजीवन म. धर्म के जिस स्वरूप का निदर्शन मिलता है वह अवश्य ही भोजपुरी अंचल से अलग है। भोजपुरी प्रदेश के भीतर विस्तार पाने वाला धर्म का स्वरूप प्रागैतिहासिक, वैदिक एवं पौराणिक धर्म के इर्द-गिर्द घूमता हुआ अपने आज के स्वरूप म. उपलब्ध है। भोजपुरी ग्रामीण जीवन म. प्रचलित धर्म मूलतः शास्त्रीय धर्माचारों का विकारी रूप है जो ग्रामीण समाज म. सहजता से स्वीकृत एवं लोकजीवन म. स्वाभाविक रूप म. पालित होता रहा है। नाना प्रकार की धार्मिक क्रिया-विधि लोकाचार, व्रत, त्योहार इत्यादि मूल उत्स के ही अनुषांगिक रूप है। जिसे ग्रामीण स्त्री-पुरुषों द्वारा नाना अवसरों पर अनुष्ठित किया जाता है। डॉ सत्येन्द्र इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को "वस्तु के आधार पर लोकगीत के अन्तर्गत पूजा, अर्चना, प्रार्थना, स्तुति विषयक गीत मानते हैं।" जबकि डॉ कृष्ण देव उपाध्याय लोकगीतों के विभाजन के अन्तर्गत "व्रतों के क्रम म., देवी-देवताओं की दृष्टि से गाये जाने वाले गीतों म. रखते हैं।"[6] डॉ शांति जैन ने अपनी पुस्तक 'लोकगीतों के संदर्भ और आयाम' म. गीतों को विभाजित करने के क्रम म. धार्मिक गीतों को 'व्रत एवं त्योहारों के गीत' और 'धार्मिक भावना के गीत' के रूप म. चिह्नित किया है। उन्होंने हिन्दी प्रदेशों म. व्रत एवं त्योहारों (अक्षय तृतीय, वट सावित्री, गंगा दशहरा, निर्जला एकादशी व्रत, माता पूजी या बसियौरा, सोमेश्वर व्रत, हरयागोंद्या या दिवासा, गुरुपूर्णिमा, मधुश्रावणी तीज, नागपंचमी, रक्षाबंधन, भुजलियों का त्योहार, कजली तीज, बहुरा चौथ, जन्माष्टमी, हरतालिका तीज, गणेश चौथ, चकचंदा, कर्मा धर्मा, पितृपक्ष, जीवित्पुत्रिका या जिउतिया व्रत, सुअटा गीत, साँझी गीत, भगत., विजयादशमी या दशहरा, गरबा गीत, करवा चौथ, दीपावली, सोहराई पर्व, शारदा माता के गीत, अन्नकूट या गोवर्धन

पूजा, पिडिया व्रत, यमद्वितीय या भैयादूज, छठ या सूर्यषष्ठी व्रत, देवोत्थानी एकादशी, तुलसी-पूजा, कार्तिक पूर्णिमा, नवान्न व्रत, देवठान या देवोत्थान, मागे पर्व, मकर संक्रान्ति, संकट चतुर्थी, वसंत पंचमी, शिवरात्रि, फागो पर्व, रोव (ईद के गीत) शीतला अष्टमी, फूलदेई का त्योहार, जंवारा, जमरा, सरहुल, बैसाखी, चैती छठ, रामनवमी, महावीर जयन्ती, चैती अवाह्न, पूजनो पूनो आदि) को अनुष्ठित करते हुए ग्रामीण समाज धार्मिक लोकाचारों के संग जिन गीतों को गाता है उसे 'व्रत एवं त्योहार के गीत' की संज्ञा दी है। ऊपर दिए गए नामों की सूची से स्पष्ट है कि ग्रामीण समाज के भीतर अनेक प्रकार के स्थानीय और सामूहिक व्रत त्योहार मौजूद हैं जिन्ह. अनुष्ठित करने के लिए ग्रामीण समाज गीतों को माध्यम बनाते हैं। शास्त्रीय पद्धति के मंत्रोच्चार का स्थान लोकगीतों ने ले लिया।

गीत एवं नृत्य प्राचीन काल से ही मानव सभ्यता के संग ओत-प्रोत रूप म. जुड़े हुए हैं। आदिम सभ्यता किसी भी कार्य के सम्पन्न करने के पूर्व सामूहिक रूप म. एकत्र होकर गायन एवं नृत्य की विशेष शैली द्वारा अपने आप को उद्दीप्त किया करते थे तदुपरान्त कार्य करने की दिशा की ओर अग्रसर होते थे। नृत्य एवं सामूहिक गायन की विशेष भंगिमा से न सिर्फ उनम. एकात्म होने का बोध जन्मता था वरन कार्य सिद्धि के प्रति मनोबल बढ़ता था।

डॉ सत्येन्द्र लोकगीतों के वर्गीकरण के लिए जीन आधारों को चयनित किया है उनम. से एक आधार 'योनिभेद' भी है। "योनिभेद के आधार पर लोकगीत स्त्रियों के गीत और पुरुषों के गीत म. विभक्त है।"[7] स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीतों का वृहतम् क्षेत्र व्रत एवं त्यौहार ही है। इसके अतिरिक्त संस्कार के गीत, श्रम के गीत ऋतु संबंधी गीत भी स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं। इसका कदापि यह अर्थ नहीं कि पुरुषों द्वारा व्रत त्योहार एवं धार्मिक भावना के गीत नहीं गाये जाते हैं। आलेख के आरंभ म. ही उल्लिखित किया जा चुका है कि धर्म भारतीय सामाजिक जीवन का प्राणकेन्द्र है। धर्म की केन्द्रिकता को ध्यान म. रखकर ग्रामीण समाज (कोई भी भाषा-भाषी) अपने इष्ट से स्तुत्यात्मक अंदाज/स्वर म. अपना निवेदन प्रस्तुत करता है। जिसम. सभी के हित साधना से आरम्भ होकर स्वयं के कल्याण का भावबोध भी छिपा होता है। पूजन पूनो व्रत के अवसर पर गाया जाने वाले इस लोकगीत म. यही भाव व्यक्त हुआ है-

बूढ़ सुहागन हो बहू
सतपूती हो
भाई भतीजे जीते रह.
पीली पटियों राज कर.।

एक अन्य गीत म. देवी माता की प्रिय वस्तुओं का उल्लेख करती हुई एक स्त्री गाती है। यह गीत ग्रामीण लोक समाज म. पूजी जाने वाली बहुचर्चित देवी शीतला माता का है-

आरे मलिया अँगनवा दउना मडुअवा
सेवक अँगनवा निमिया गाछि हो।
आरे बगिया म. फूलेला अड़हुल फुलवा
सेवक रउरी बाट जोहे हो।

"गाँव म. चेचक को शीतला महारानी या देवी के नाम से संबोधित किया जाता है। शीतलता देने वाली शक्ति के रूप म. इनकी उपासना की जाती है। शीतला स्तोत्र म. शीतला माता का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है-

वन्दे ऽ हं शीतलं देवी रासभस्थां दिगम्बराम्।
मार्जनी कलशोपेतां शूर्पालंकृतमस्तकाम्।

--शीतला दिगम्बरा हैं। गर्दभ पर आरूढ़ रहती है। सूप, झाड़ू और नीम के पत्ते से अलंकृत होती हैं और हाथ म. शीतल जल का कलश रखती हैं।"[8]

किसी भी समाज अथवा जाति म. देव-देवियों का स्वरूप ऐतिहासिक एवं धार्मिक चेतना के परिणामस्वरूप तय हुआ है। परवर्ती काल म. चेतना के विस्तार/सीमाबद्धता ने उसे आकार प्रदान किया है। इस बांगला लोकगीत म. शिव को कृषि देवता के रूप म. चित्रित करता हुआ लोककवि धार्मिक भावना के साथ सामाजिक जीवनगत-चेतना को एकीकृत कर दिया है। कृषि देवता शिव की वंदना करते हुए ग्रामीण जीवन म. कृषि कर्म से जुड़े उपकरणों का वर्णन स्वाभाविक रूप म. चित्रित हो गया है-

"बैशाख मासे शिब ठाकुर कापास बुनिलेन
बैशाख मासे किसान भूमिते दिलो चाष।
आषाढ़ मासे विश्व शिव ठाकुर बुनिलेन कपास।।
कापास बुनिया शिब गेलो कूचूनीपाड़ा

कूचूनीपाडा होइते दिया ऐलो साड़ा।।
कापास तूलिया गंगादेवी के दिलेन गंगार सूता प्रस्तुत,
शिबेर ताँत बोना

कापास तूलिया दिले गंगार ठाँई।
गंगा काटिलो सूता महादेव बुनिलो ताँत
हर समुद्र हरेर जल क्षीर समुद्रेर पानि,
उत्तम धूईया दिलो निताई धूबिनी
शिवनाथ कि महेश"[9]

मालदह जिले म. प्रचलित इस गंभीरा लोकगीत म. शिव को कृषि देवता के रूप म. उपस्थित करके शिव को कृषि कार्य के साथ युक्त बताकर धार्मिक भावना के साथ सामाजिक चेतना को मेलबंधन द्वारा लोक जीवन के एक नवीन पक्ष को उद्घाटित किया है। किसी समय मालदा, उत्तर एवं दक्षिण दिनाजपुर ताँत बुनकरों के लिए प्रसिद्ध माना जाता था। यहाँ के बुने गए ताँत अन्य देशों म. निर्यात किए जाते थे। जीविकोपार्जन का प्रधान उत्स होने के कारण लोककवि की चेतना ने शिव और गंगा को भी इस कार्य से जोड़ दिया। वास्तव म. लोक मानस की यह प्रवृत्ति रही है, खासकर बंगाल म. प्रचलित गंभीर लोकगीतों की यह विशेषता है कि लोकजीवन म. जिन समस्यों से 'लोक' जूझता है, संघर्ष करता है उसका समाधान या निराकरण न पाकर वह ईश्वर (शिव) से सवाल करता है उसे सामान्य मनुष्य के रूप म. चित्रित करके एक ओर ईश्वर के सामान्यीकृत स्वरूप को लोक को समक्ष उपस्थित करता है दूसरी ओर अपने दुःख, शोक, पराजय, हताशा, निराशा म. उसका अवलम्बन ग्रहण करता है। यह सच है कि जब दिन-रात मजदूरी करने वाले साधारण जनता की परेशानियों, संघातों और संघर्षों का को हल समाज और राजनीतिक महकमों से न मिले तो वह ईश्वर के आसरे म. जाता है। वास्तव म. लोककवि अपनी कलात्मक कल्पना द्वारा ईश्वर गढ़ता है और अपने उत्तरो की तलाश लोकगीतों म. करती है। भारत के अन्य गाँवों की तरह बंगाल के गाँवों म. भी दरिद्रता, निरक्षरता, बेरोजगारी, बीमारी, अंधविश्वास एवं पिछड़ेपन की समस्या है। जिसे वह सुलझाने म. नाकाम होने पर ईश्वर के दरबार म. गुहार लगाता है। 'गंभीरा लोकगीतों' की यही विशेषता है। इसम. कोई एक व्यक्ति शिव की सज्जा म. 'लोक' के समक्ष उपस्थित होता है और उसके प्रश्नों और समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करता है। ग्रामीण लोकजीवन म. यह मनोरंजन के साथ वर्तमान व्यवस्था की पोल खोलकर उसका मखौल उड़ता है। एक अन्य 'गंभीरा' लोकगीत म. लोककवि शिव को राजनीतिक नेता की प्रतीकात्मक भूमिका म. उपस्थित करके उसे अपने सारे अस्त्र-शस्त्रों को त्याग देने के लिए कहता है। क्योंकि वह देश को संचालित नहीं कर पा रहे हैं। शिव के माध्यम से इस लोकगीत म. राजनीतिक नेताओं की व्यर्थता की ओर संकेत किया गया है-

बोली ओहे योगीवर, बोलछि तोके बारम्बार
बाद्यम्बर झोला तुई फेले देना
जोदि तुमि पूजा खाओ, मोदेर हाते हात मेलाओ
नाइले शिंगा, डमरू, त्रिशूल किछुई थाकबे ना।।
नामेते बलद सेटा गाड़ी नाहि टाने
ऐतो यानबाहोन सब फेले दिये
ताते चढ़ो हे केनो खूले बोलो तो हे एखाने।।

बंगला लोकजीवन म. प्रचलित लोकगीतों म. धार्मिक भावना के गीतों का अपना अलग अंदाज है। 'टेसू' गीतों म. वैष्णव चेतना की जहाँ अभिव्यक्ति हुई है वहाँ भी लोककवि राम और कृष्णा एवं सीता तथा राधा को 'ईश्वरीय जगत' से बाहर लाकर उन्ह. सामान्य मनुष्य के रूप म. मूर्तिमान कर दिया है। ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगाना एवं उसकी भूमिका निर्धारण करना बंगीय लोकसाहित्य का अपनी विशिष्टता है। इसकी पृष्ठभूमि म. ऐतिहासिक उपादानों की महत्ती भूमिका रही है उसे नजरअंदाज करके बंगला लोकगीतों का विवेचन एकांकी होगा।

एक परिसंख्या के अनुसार "बाँकूडा-वीरभूम जिला म. ग्रामीण देव-देवियों की संख्या 290, मेला संख्या 564, उत्तर तथा दक्षिण चौबीस परगना एवं मिदनापुर जिला म. ग्रामीण देव-देवियों की संख्या 365, एवं मेला संख्या 312, वर्द्धमान पुरुलिया म. 266 जन देव देवी रूप म. पूजे जाते हैं। उत्तर बंग म. इनकी संख्या 116 तथा मेला संख्या 469 है। 1961 के जनगणना अनुसार हिन्दू देव-देवियों की संख्या 93.84 (%) प्रतिशत है।"[10]

पिछले सौ सालों म. ग्राम-बांगला म. अनेक परिवर्तन घटित हुए हैं। ग्रामीण मनुष्य की चेतना समय के साथ विकसित हुई है। "धार्मिक अनुष्ठानों म. परिवर्तन के स्वर साफ सुनाई दे रहा है तथापि धार्मिक विश्वासों म. अद्यावधि किसी प्रकार के परिवर्तन के लक्षण स्पष्ट नहीं हुए हैं। इसका मूल कारण ग्राम बांगला म. व्यापक सामाजिक परिवर्तन का न होना है तथापि पारिवारिक एवं सामाजिक बंधन को बचाए रखना ही ग्रामीण धर्म विश्वास का अंतर्लीन आकांक्षा रहा है। कई बार जाति विशेष के देव देवी होते हैं। वास्तव म. ग्रामीण धर्म का अनेकांश ही सामाजिक धर्म के भीतर निहित रहता है।"[11]

बंगीय लोकजीवन म. पंचदेवोपासना का प्रचलन बहुत पुराना है। शिव, काली, दुर्गा, गणेश, हरि की पूजा धार्मिक विश्वास के आधार पर किया जाता है। वर्तमान समय म. इन देव-देवियों की पूजा पद्धति म. जिन अनुष्ठानों का नियोजन किया जाता है वह सार्वजनिक पूजा है। जो (बारवाड़ी पूजो) के नाम से बंगाल म. जाना जाता है। गणेश की पूजा व्यावसायिक समितियों द्वारा की जाती है। बंगाली परिवारों म. आज भी घर-घर म. वसंत पंचमी के दिन सरस्वती पूजा और शरद पूर्णिमा के दिन लक्ष्मी की पूजा की जाती है। 'लोक्खी पाचाली' पढ़कर बंगाल की गृहस्थ

महिलाएं लोक्खी (लक्ष्मी) का आवाहन करती है।

कृष्ण एवं राम भारतीय साहित्य के दो प्रमुख पौराणिक चरित्र है जिनको आधार बनाकर हिन्दी साहित्य म. कृष्ण काव्य धारा तथा रामकाव्य धारा प्रवाहित हुई। भोजपुरी एवं बांगला लोक साहित्य म. कृष्ण और राम संबंधी-प्रचुर लोकगीत उपलब्ध है। वैष्णव भाव से लोकगीतों म. सर्वत्र आध्यात्मिकता का ही प्राचुर्य हो ऐसा नहीं है तथापि लोकमानस ने कृष्ण के प्रति जिन भावों को अभिव्यक्त किया है उसका निदर्शन नीचे दिया जा रहा है-

(1) "काल भ्रोमोर पिरीत जाने ना।
राधारे कुन्जे जाइते दिबो ना।।
जाओ फिरे जाओ कालसोना।
राधारे कुन्जे जाइते दिबो ना।।"

(2) आर तो जाबो ना जले।
काला थाके बो कदमतले।।

(3) चल सजनी जाबो जमुना।
देईखे आईसबो गो कालसोना।।
छल कोईरे जल आईनते जाबो।
देईखबो गो कालसोना।।
कालशशी दिवानिशी आछे गो कदमतलाय
आड़ नयोने मूचकि हाँसी देईखले किगो प्रान जुड़ाय।
जे देखे कालबदन
तार घरे रोहा बड़ो दाय।।"[12]

लोकगीतों म. सहज, सरल मानवीय भाव शास्त्रानुशान की अवहेलना करते हुए ग्रामीण जनमानस के हृदय म. अंकुरित होते हैं तथा संवेदनशीलता और भावविह्वलता म. अभिभूत होकर गेयता म. अभिव्यक्त होते हैं। भाव तरंग की एक-एक उर्मियाँ अपनी सम्पूर्ण छटा, न केवल देशज भाषा एवं शैली म. आकार ग्रहण करते हैं वरन अपनी समग्र अर्थवत्ता म. चित्रात्मक रूप म. मूर्तिमान हो उठते हैं। राम संबंधी इस लोकगीत म. राम के वनगमन का दृश्य साकार करते हुए लोककवि ने राम और लक्ष्मण के संग सीता के वनगमन को भी अभिव्यक्त किया है। राजप्रासाद के वैभवपूर्ण जीवनयापन करने वाली सीता जब वन पथ पर गमन करती है तो वह तेज धूप और राह की कठिनता के कारण थक जाती है। राम और लक्ष्मण सीता के लिए वृक्ष से शाखाओं को तोड़कर उसे छाया प्रदान करते हैं। तब सीता धीरे-धीरे वन की ओर प्रस्थान करती है।

माथाय जटा वनफूल आँटा
पोईरलो राम गाछेर बाकल।
जखन राम सजिलो ओ भाई
बाकल कोरे झलमल।।
नगोरे प्रोजारा काँद.
गाछे काँद. कोकिला।
राजार महोले काँद.
कौशौला आर सुमिता।।
ओपोरे सूरजिर छटा
नामय ताता बालि गो
चोलिते णा पारे सीता
कोरछि बिकलि गो।।
राम भांगिलेर गाछेर डाला माँ
लखोन घोईरलेन मूलेते।
ताहारि छायाय सीता
चलेन धीरे-धीरेते।।
आमारि आंगिना माझे
सोनार होरिन जाय चोईले।
घरे आछे लक्खोन देओर
सोनार मिरृगी दाओ घोरे।।

"पुरूलिया के डूंडकू गाँव से संग्रहित एक 'टूसू गान' म. रामलीला का आख्यानमूलक वर्णन पाया गया है। भरत विलाप का प्रसंग उस लोकगीत इस रूप म. अभिव्यक्त हुआ है-

कैककी माँ नहे जननी।
तुमि होउ गो कुटिल डाकिनी।।
निज स्वामी खेले मा गो जेनो कालसापिनी।।
आँखिजने भासे आजि जतो पुरवासिनी।।
बने ते पाठाले राम, मा-सीता ठाकूरानी।
राजार झिआरी सीता होलो चिरदूखिनी।।
शोकेर सागोरे भासि सदा मागो जननी।
शयने सपोने शुनि नरक ध्वनि।
शैशवेते जोदि मागो खाबाते विषपानी।
ये दुख-दंशन मा गो नाहि होते दिवस यामिनी।।"[13]

एक भोजपुरी गीत म. राम जब विवाह के लिए चलने लगते हैं तो माता कौशल्या पुत्र के सकुशल लौट आने पर सूर्य भगवान पर दूध की धार चढ़ाने की बात कहती है। यह भाव इस गीत म. अभिव्यक्त करती हुई ग्रामीण माता अपने पुत्र को विवाह के लिए प्रस्थान करती है-

जब राजा राम विआहन लागे
माता सुरुज माथ नाव रे
राम बिअहिं जब घर लउटिह.
तोहे देबै दुधवा के धार रे।

राम संबंधी लोकगीतों म. राम-जन्म, राम के प्रताप, उनके वनवास का प्रसंग, माता कौशल्या की चिंता, भरत का पश्चत्ताप आदि अनेक प्रसंग मिलते हैं। इस लोकगीत म. वनवासी पुत्र के लिए माता कौशल्या के मनोभाव व्यक्त हुआ है तो दूसरी ओर राम के शीघ्र लौट आने के लिए माता की व्याकुलता दिखाई पड़ती है-

हमनी के कउनो कसूर होइ गइले
हमार बिरना राम काहे न आइले
दिनवा गिनत मोरी अंगुरी खियइली
रहिया तकत मोरी अँखिया पियरइली
चौदह बरिस के समय बीत गइले
मो सम अधम कवन जग माहीं
जेकरे कारन राम बनवा म. जाहीं
सोचे भरत मनवां मुरझइले
चूमे ना पइलीं हम प्रभुजी के पउँवा
रखली धीरज देखि देखि के खड़उँवा
राम खातिर भाई भरत बिलखइले।

हिन्दी-भाषी प्रदेशों म. राम का चित्रांकन अन्य भाषी प्रदेशों की भांति मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप म. हुआ है। फलतः उनके जीवन म. रासलीला जैसे प्रसंग प्रायः दुर्लभ है। तुलसीदास भी अपनी रचनाओं म. ऐसे प्रसंगों से बचने का प्रयास करते नजर आते हैं। परन्तु भोजपुरी लोकगीतों म. वर्णित कृष्ण की छवि बांगला लोकगीतों के समान ही शैशव म. तरह-तरह की शरारत. करने वाले, वंशी बजैया, गोपियों से छेड़छाड़ करने वाले रूप म. चित्रित हुआ है। कृष्ण द्वारा कहीं स्नान करती राधा एवं गोपियों के चीर चुरा लेने का वर्णन इस लोकगीत म. इस प्रकार हुआ है-

एक दिन गेली राधे जमुना किनार हे कदम तर
ठाढ़े मोहना मुरार हे कदम तर
करे असनान चीर धैलन उतार हे कदम तर
चीर चोराइ चढ़े कदम के डार हे कदम तर
करजोरी विनती करत ब्रजनार हे कदम तर
देहु देहु आहो कृष्ण चीर हमार हे कदम तर
जल माँझे उघार हे कदम तर
चीर हम देब तोहे सुन ब्रजनार हे कदम तर
जब आइब किनार हे कदम तर।

वर्ष भर ग्रामीण समाज जिन धार्मिक अनुष्ठानों को अपने संस्कार, कर्म संस्कृति अथवा ग्रह नक्षत्रों के प्रभाव, कुल देवता ग्राम देवता, कुल गुरु या व्रत त्योहारों के नाम पर आयोजित करता है, उनम. से अधिकांश की रीति-नीति एवं पद्धति संपूर्णतया लौकिक विधान एवं लोक रीति-नीति के द्वारा प्रतिपालित किया जाता है। शास्त्रीय विधान द्वारा सर्वोता, न तो इनका आयोजन होता है और न ही प्रतिपालन ही, भोजपुरी समाज म. प्रचलित तीज, जिउतिया, वट सावित्री, गोधन पूजा, मौनी अमावशया, करवा चौथ, चैती नवाह्न, चैती छठ, शिवरात्री, संकट चतुर्थी आदि अनेक ऐसे व्रत त्यौहार हैं जिन्ह. सम्पन्न करने के लिए किसी शास्त्रीय पद्धति का आश्रय नहीं लिया जाता है

बंगीय ग्रामीण समाज म. प्रचलित ईतु पूजा, माघ व्रत, संकट व्रत, सूर्य व्रत, षष्ठी व्रत, शनि, सत्य पीर, टूसू, भाई, लक्खी पूजा, चडक, चड़क मंगल चण्डी, नील पूजा, मनसा पूजा, शीतला पूजा, नवान्न, गाजन, विपद ताड़िनी, फलहारी कालीपूजा ऐसे व्रत हैं जिन्ह. न तो शास्त्रीय आचार पद्धति द्वारा संपन्न किया जाता है, और न ही इसम. पुरुषों की अनिवार्य उपस्थिति होती है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सांस्कृतिक पीठिका म. उनकी भूमिका नगण्य है।

एक भोजपुरी लोकगीत म. जिउतिया पर्व (जीवित्पुत्रिका) पर 'खरजिउतिया' करने वाली गंगा के गीत गाती हुई अपने पूरे परिवार की सकुशलता की प्रार्थना करती है तथा उनके आने पर वह क्या-क्या करेगी यह बताती हुई गाती है-

पुरुबे से आवले लउहर कुसहर देओरा
हे गंगाजल बहिनो।
पछिये से आवले निरधन भाई
हे गंगाजल बहिनो।
अँगने बैठायब लउहर कुसहर देओरा
हे गंगाजल बहिनो।
अँचरे बैठायब निरधन भाई
हे गंगाजल बहिनो।
टका ले समोदबो लउहर कुसहर देओरा
हे गंगाजल बहिनो।
छोटकी ननदिया ले समोधबो निरधन भाई
हे गंगाजल बहिनो।

एक अन्य भोजपुरी लोकगीत म. देवी के स्वरूप का चित्रण किया गया है, देवी संबंधी गीत गाने की प्रथा भोजपुर तथा अवधी क्षेत्र म. विशेष रूप से है। देवी की अपूर्व महिमा के प्रति भक्त अपने हृदय के दैन्य-दुःख का निवेदन करता हुआ उससे मुक्त होने की कामना करता है-

आवन की बलिहारी मैया
तेरे आवन की बलिहारी
दुई देवी निकसी हाथ लीन्हे बरछी
सहस कलस सिरभारी
लाल घँघरिया मैया मोरी ओढ़नियाँ
बहियाँ लाल सितारी
सेतुआ राव कुँआरिन खावा
बुढियन खाँड सोहारी
बासी भात चहूँ जग पूजा
ऊपर सिखरन ढारी
लँगुरे नाइ खेइ लइ आवा
बूड़त नाव हमारी
सात सुपारी मैया ध्वजा नारियल
वहि लउ भ.ट हमारी।

देवी गीत लगभग सभी लोक भाषाओं म. पाया जाता है, इसका एक कारण भारतवर्ष म. प्रचलित शक्ति की उपासना है। भारतवर्ष का पूर्वोत्तर प्रांत देवी पूजा एवं मातृ अराधना का गढ़ माना जाता है। बंगाल म. प्रचलित टूसू या तूसू और भदू पूजा भी देवी पूजा मानिंद किया जाता है। इसम. लौकिक आचार विधि द्वारा पूजन कार्य ग्रामीण सधवा स्त्रियों और युवतियों द्वारा संपन्न किया जाता है। अगहन महिने से आरंभ होकर मकर संक्राति तक प्रत्येक संध्या से रात्रि तक ग्रामीण स्त्रियाँ एकत्र होकर टूसू या तूसू की पूजा करती हैं एवं इसके गीत गाती हैं। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों का वर्ण्य-विषय नानाविध होता है।

सप्त सखि जल के जाई मा।

कोन टूसूटि भालो गो।
मोध्येर टूसू कृष्णेर राधा गो।।
अइटाई बोटे भालो गो,
ओगो टूसूमोनि
तूमाय देइखे कृष्णो बाँशी देई टानि।
ओ गो राधामोनि।

इस लोकगीत म. लोक कवि की कल्पना म. राधा और टूसू दोनों मिलकर एकाकार हो गयी है। कवि कहता है सात सखियाँ पानी भरने जा रही है इनम. से कौन सी टूसू अधिक अच्छी है। मध्य म. अवस्थित टूसू कृष्ण की राधिका है। वही सबसे अच्छी है। ओ गो टूसूमनी तुम्ह. देखकर कृष्ण टेरता है। ओ गो राधा रानी। टूसू गीतों म. कभी-कभी लोककवि की कल्पना म. यमुना किनारे कदम्ब पेड़ के नीचे कृष्ण वंशी बजाते हुए चले आते हैं।

टूसू की पूजा देवी या मातृ स्वरूपा मानकर की जाती है। लौकिक विधान एवं लोकाचार पद्धति द्वारा यह पूजा स्त्रियों और युवतियों द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है तथापि इन गीतों म. कहीं कृष्ण तो कहीं राम केन्द्रिक गीत पाए जाते हैं। रामायण को अवलम्बित करके जिन गीतों को बंगीय ललनाय. गाती हैं, वे टूसू गान इस प्रकार है-

1) "ओ रामेर मा ओ रामेर मा।
देखोगो रामेर मुख दशा।।
बस्तर बिना गाछेर बाकोल।
तेल बिना माथाय जटा।।
ओ राम जटाधारी।
बने गेले केमोन धोर्जो धोरि।
ओ राम जटाधारी।"

2) रामेर मा गो कौशल्या रानी।
धूलाय पोइड़े अचेतन।।
ओठ मा कौशल्या रानी।
आईसचे जे तोर रामरतन
ओ राम जाईसना बने
बने गेले केमोन कोरे धोर्जो धोरि।
ओ राम जाइसना बने।"[14]

वास्तव म. टूसू तथा भादू देवियों की कल्पना लोकमानस म. जिन रूपों म. हुआ है उसी का प्रतिफलित रूप टूसू तथा भादू गीतों म. देखा जाता है। दोनों लौकिक देवियाँ हैं एवं दोनों की पूजा अर्चना एवं व्रत पद्धति लौकिक आचार एवं विधान द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इसी प्रकार राम तथा कृष्ण को भी केन्द्र म. रखकर लोक जीवन प्राचर गीत पाये जाते हैं। परन्तु इनकी पूजा पद्धति और लोकाचारों म. शास्त्रीय विधान का अभाव रहा है। इसके अतिरिक्त लोक विश्वास एवं लोक परंपराओं का भी इन धार्मिक कृत्यों म. महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

इसी प्रकार भादू के गीतों म. भी नाना भावों का अभिव्यंजित होते देखा जाता है। बांगला लोकगीतों की सबसे बड़ी विशेषता इसकी निजता है। इसका निजता का विस्तार पश्चिम बंगाल से आरंभ होकर पूर्व बंगाल (वर्तमान बांग्लादेश) के सुदूर प्रांत तक फैला हुआ है। इसम. लोकमानस की सारी छवियाँ साकार हो उठी है। हर्ष, विषाद, उत्सव-उल्लास के संग संघर्ष सम्मिलित हो उठा है। इसीलिए इन लोकगीतों म. कवि की अवांतर कल्पना के साथ समसामयिक संदर्भों की भी सुन्दर प्रस्तुति हुई है। ग्राम बांगला म. रहने वाले साधारण जनसमूह, खटकर खाने वाले मजदूरों, कृषिजीवी मनुष्य तथा स्त्री समूह म. भी समसामयिक समस्याओं, राजनीतिक हलचलों तथा क्रमिक परिवर्तनों के प्रति ना सिर्फ उत्सुकता है वरन स्वतंत्र दृष्टिकोण भी है, चाहे वह भाषा आंदोलन हो या राजनीतिक परिवर्तन, सामाजिक समस्या हो या धार्मिक मतवाद, मानवतावादी दृष्टिभंगी हो या अशिक्षा या बेरोजगार लोकसमाज अपनी सघन सांद्रता म. समस्त अनुभूतियों को न केवल संजोता है वरन उसे देशज भाषा, देशज शैली एवं भाव म. बांधकर गीतों म. प्रस्तुत कर देता है। भले ही अवांतर और सीमाबद्ध कल्पना इसे अभिजात साहित्य से परे ठेल दे परन्तु अपनी ताजगी, टटकेपन और जमीनी जुड़ाव म. ये अप्रतिम हैं। एक बँगला लोकगीत म. लोककवि राम संग सीता के वनगमन तदुपरान्त रावण द्वारा उसके हरण की बात करता है, परन्तु उसके पूर्व लोककवि कल्पना करता है कि सीता पर्ण कुटी म. बैठकर पाशा खेल रही है यह लोककवि की सीमाबद्धता है। अल्पज्ञान के कारण वह रामायण और महाभारत के अंशों को मिला देता है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से इसम. भले ही असंगति है परन्तु प्रस्तुतिकरण म. यह सर्वथा उत्तम एवं उत्कृष्ट है। कवि कहता है-

"अशोक बने पातेर कुटीर।
सीता पाशा खेईलेचे।।

जोगी बेशे रावन आईसे।
सीता हरन कोईरेचे।।
सीतार अईन्बाषने।
सोनार लंका पोड़ालो गो हनुमान।।
सीतार अईन्बाषने।।"[15]

'छेले भूलानोर छड़ा' का आलोचना करते हुए कवि रवीन्द्रनाथ लिखते हैं- एक ही छड़ा (तुकबंदी) के नाना रूप पाए जाते हैं, इनम. से किसी को भी वर्जित नहीं किया जा सकता क्योंकि इन छड़ाओं का विशुद्ध या आदिम रूप की पहचान नहीं की जा सकती है और न ही उसकी आवश्यकता है। समय के साथ-साथ विभिन्न लोक मुख द्वारा प्रयुक्त होकर ये छडाय. इतनी जड़ित-मिश्रित एवं परिवर्तित होती रही है कि इसके विभिन्न रूपों से किसी एक रूप को सठीक मानकर निर्वाचित कर लेना असंगत होगा। इन्ह. निर्जीव अतीत कीर्ति के मानिंद यथावत संरक्षित करना संभव नहीं। ये सजीव हैं, ये सचल हैं, ये देश-काल-पात्र अनुसार प्रति मुहूर्त उपयोगी हैं। प्रति नियत परिवर्तनशीलता ही इन छड़ओं की प्रकृति है यह बताने के लिए इसके भिन्न-भिन्न रूपों की रक्षा किया जाना आवश्यक है।"[16]

वास्तव म. "लोकसाहित्य की सामग्री प्रायः सामुदायिक जीवन की समकालीन वास्तविकता को चित्रित करती है और यदि उसका व्यवस्थित रीति से अध्ययन किया जाये, तो वह जाति-विशेष के व्यक्त और अव्यक्त, भौतिक और मानसिक जीवन को अद्भुत रूप म. उजागर कर सकती है।"[17]

लोक साहित्य के अध्ययन, चिंतन एवं अनुसंधान के संबंध म. पहले यह धारणा थी कि लोकसाहित्य का अध्ययन 'अवशेषों' या उत्तर जिविताओं का अध्ययन है। इसका वर्तमान के साथ न तो कोई संबंध है न सार्थकता। वरन उत्तर पूँजीवादी समय म. यह सोचा जाने लगा कि इसकी प्रयोजनीयता और इसके अस्तित्व पर भी प्रश्न चिह्न लग जायेगा। सही है कि उत्तर पूँजीवादी और उत्तर औपनिवेशिक दौर म. भाषा एवं संस्कृति से जुड़ी हर उपलब्धि पर अवलुप्ति के घने बादल मंडरा रहे हैं। वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण, उदारवाद तथा बाजारवाद की नीतियां देशीपन की सिक्तता को बड़ी तेजी, चालाकी और खूँखार ढंग से सोख रही है। नयी पीढ़ी 'लोक' की व्याप्ति से न सिर्फ दूर है वरन वे इससे नितांत अंनजान भी है। एक बड़ी खाई पीढ़ियों के बीच अनदेखे म. पसर गयी है, जिसम. लोक से जुड़ी सारी कवायद., विश्वास, परंपरा, आचार-विचार, जीवन पद्धति अब न सिर्फ पुराने जमाने का होकर आदिम हो गये हैं वरन अपनी सार्थकता भी खोने के कगार पर हैं। ऐसी स्थिति म. धार्मिक आचार, अनुष्ठान, पर्व त्यौहार तथा इस अवसर का लगने वाले मेले और सामूहिक जमायत इस बात के सूचक है कि आधुनिकता के संग पुरातन और आदिम समझे जाने वाले लोकाचार, लोकविश्वास, लोक उत्सवों, व्रतों एवं त्योहारों की महती भूमिका है। ये जीवन की एकरसता को मिटाकर उसम. आनंद और उल्लास का रंग भरते हैं तथा मनुष्य मात्र को ऊर्जान्वित करते हैं।

"जर्मन फिलॉस्फर लूडविंग फोयेरबाख लिखते हैं- 'The image underlies the essential difference Between religion and philosophy. Religion is essentially dramatic. God himself is a dramatic , i.e. personal being. The image, as image, is the thing of religiong.' फोयेरबाख जिसे image कह रहे हैं उसका बंगीय ग्रामांचल के ecology अथवा वास्तव संस्थान के संग निविड़ योगसूत्र है। बारह महीने म. छः ऋतुएं और छः ऋतुओं म. 'तेरह पार्वन'। तेरह पार्वनो म. ग्राम बांग्ला इस image (आकृति/प्रतिको पासना)की पूजा करती है, पूजा के संग अल्प-विस्तृत उत्सव आयोजित होता है, शायद इसके साथ वेदान्त दर्शन का कोई संपर्क नहीं है, परंतु इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि गाँवों म. होने वाले यह मूर्तिपूजा पारिवारिक बंधन को मजबूत बनाते हैं। यातायात और योगायोग के सुअवसर बनते हैं। मनुष्य नवीन प्रकार के अनुभवों से युक्त होता है। एक गाँव के संग दूसरे गाँव का संबंध बनते हैं। मानवीय संबंधों का क्षेत्र सुविस्तृत होता है। पूजा उत्सव मेला ग्रामीण जीवन म. नयी आशा और आनन्द संचारित करते हैं।"[18]

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि ग्रामीण जीवन चाहे वह बांगला हो या भोजपुरी सामुदायिक हो या एकांगी, संयुक्त हो या एकल धार्मिक लोकाचारों अनुष्ठानों और विश्वासों की परिधि म. घूमता हुआ पूर्व-प्रागैतिहासिक युग से लेकर आज के अत्याधुनिक संजालों से युक्त आधुनिक जीवनचर्या के बीच धर्म के समान अथवा देव-देवी के सामान किसी और वस्तु को इतना 'dramatic' (नाटकीय) नहीं कर पाया कि वह धर्म अथवा नाटकीय प्रतिकोपासना को सम्पूर्ण रूप से विस्थापित कर सके। फलतः धर्म एवं धार्मिक ध्वजा का भारतीय ग्रामीण समाज/नगरीय समाज म. एकछत्र राजत्व है।

संदर्भ :

1. चक्रवर्ती, रमाकांत, बांगालीर धर्म, समाज ओ संस्कृति, सुवर्णरेखा, कोलकाता, 2002, ISBN-81-86263-31-4, पृ. 20
2. शर्मा, डॉ सुनीता, विवस्ता, अवस-43, हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर, 2017, ISBN-0975-6663, पृ. 36
3. तिवारी, डॉ. उदयनारायण, भोजपुरी भाषा और साहित्य, बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, संवत 2010, पृ. 232
4. चक्रवर्ती, रमाकांत, बांगालिर धर्म, समाज ओ संस्कृति, सुवर्णरेखा, कोलकाता, 2002, ISBN-81-86263-31-4, पृ. 53
5. तिवारी, डॉ. उदयनारायण, भोजपुरी भाषा और साहित्य, बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, संवत 2010, पृ. 232
6. अग्रवाल, डॉ अनसूया, हिन्दी लोकसाहित्यशास्त्र सिद्धांत और विकास, नीरज बुक स.टर, दिल्ली, 2009, ISBN-81-88381-52-7, पृ. 116
7. वही, पृ. 114

8. जैन, डॉ. शांति, लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1999, ISBN-81-7124-214-6, पृ. 418
9. सं.-मजुमदार, प्रेमेन्द्र, लौकिक उद्यान प्रसंग लोकसंगीत, यू बी आई स्टाफ वेलफेयर एंड कल्चरल सोसायटी, कलकता, 1998, पृ. 78
10. चक्रवर्ती, रमाकांत, बांगालिर धर्म, समाज ओ संस्कृति, सुवर्णरेखा, कोलकाता, 2002, ISBN-81-86263-31-4, पृ. 282
11. वही, पृ. 282
12. सिंह, शांति, टूसू, लोकसंस्कृति ओ आदिवासी संस्कृति केन्द्र, तथ्य ओ संस्कृति विभाग, पं. बंगाल, 1998, ISBN-81-873660-16-X, पृ. 103
13. वही, पृ. 113-114
14. घोषाल, डॉ. छंदा, टूसूर कोथा, बंगीय साहित्य संसद, कोलकाता, बंगाब्द 1412, पृ. 71
15. वही, पृ. 72
16. उद्धृत (मू. रवीन्द्रनाथ) वही, पृ. 75
17. प्रसाद, डॉ दिनेश्वर, लोकसाहित्य और संस्कृति, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007, ISBN-81-857-26-6, पृ. 118
18. चक्रवर्ती, रमाकांत, बांगालिर धर्म, समाज ओ संस्कृति, सुवर्णरेखा, कोलकाता, 2002, ISBN-81-86263-31-4, पृ. 283